www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
सोमवार 17 जून 2019

दैनिक जागरण

कामयाबी के शिखर पर कुशलता के सोपानों से चढ़ा जाता है

संसद का पहला सत्र

नई लोकसभा के गठन के बाद आयोजित संसद का पहला सत्र यह प्रदर्शित करेगा कि संसदीय कामकाज के तौर-तरीकों में कोई बुनियादी बदलाव आने वाला है या नहीं? इस सत्र के पहले बुलाई गई सर्वदलीय बैठक में पक्ष-विपक्ष के नेताओं की ओर से भले ही चाहे जैसी उम्मीद जताई गई हो, अब तक का अनुभव कोई बहुत अच्छा नहीं रहा है। संसद के कामकाज को सुचारू रूप से चलाने के मामले में इस तरह की सर्वदलीय बैठक नाकाम ही अधिक सिद्ध हुई हैं। बेहतर हो कि इस बार नाकामी के इस सिलसिले को तोड़ा जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि सत्तापक्ष और विपक्ष, दोनों ही सकारात्मक रवैये का परिचय दें और यह ध्यान रखें कि देश उनकी ओर निगाहें लगाए हुए है। राजनीतिक दलों को यह ध्यान रखना चाहिए कि हाल में संपन्न लोकसभा चुनाव के नतीजे उन्हें यही संदेश दे रहे हैं कि अब चीजें बदलनी चाहिए। अच्छा यह होगा कि इस संदेश को दोनों ही पक्ष और खासकर विपक्ष सही तरह से ग्रहण करे। कई विपक्षी दलों की ओर से यह जो प्रकट करने की कोशिश हो रही है कि जनता ने एक बार फिर गलती कर दी है अथवा सत्तापक्ष उसे बरगलाने में सफल रहा वह सच्चाई से मुंह मोड़ने की कसरत तो है ही, जनता के प्रति अविश्वास का परिचायक भी है। मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस की ओर से चुनाव नतीजों की जैसी व्याख्या की जा रही है वह हास्यास्पद है। कांग्रेस जनादेश की मनचाही व्याख्या करने को स्वतंत्र है, लेकिन उससे यही अपेक्षित है कि वह संसद में एक जिम्मेदार विपक्षी दल की भूमिका का निर्वाह करे।

एक बड़ी हद तक यह सही है कि लोकतंत्र में विपक्ष को भी सशक्त होना चाहिए, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि विपक्ष की ताकत संख्या बल से कम उसके तार्किक रवैये से अधिक निर्धारित होती है। अतीत में ऐसा कई बार हो चुका है और विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी और राजीव गांधी के कार्यकाल में जब विपक्ष संख्या बल के लिहाज से तो कमजोर था, लेकिन अपने जिम्मेदार व्यवहार के चलते वह कहीं अधिक प्रभावी था। निःसंदेह विपक्ष का काम सत्तापक्ष की कमजोरियों को उजागर करना और जरूरत पड़ने पर उसे कठघरे में खड़ा करना भी होता है, लेकिन इसी के साथ उसका एक दायित्व सरकार को रचनात्मक सहयोग देना भी होता है। बीते कुछ समय से तो ऐसी प्रतीति हो रही है कि विपक्ष ने यह समझ लिया है कि उसका मुख्य काम विरोध के लिए विरोध करना हो गया है। दुर्भाग्य से विपक्ष अपने ऐसे रवैये का प्रदर्शन लोकसभा के साथ-साथ राज्यसभा में भी करने लगा है। व्यर्थ का हो-हल्ला संसद की गरिमा ही नहीं गिराता, बल्कि राजनीतिक दलों की छवि पर भी बुरा असर डालता है। इससे भी खराब बात यह होती है कि जब संसद सही तरह से कार्य नहीं करती तो देश के काम प्रभावित होते हैं। संसद का काम देश को दिशा दिखाना है। संसद के इस सत्र में राष्ट्रीय महत्व के अनेक विधेयक लंबित हैं। इन विधेयकों पर सार्थक चर्चा करके समुचित निर्णय लिए जाने की जरूरत है न कि सरकार की राह रोकने की।

उत्तराखंड की पैरवी

उत्तराखंड को पर्यावरणीय सेवाओं के लिए वित्तीय प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए। नीति आयोग की गवर्निंग काउंसिल की बैठक में एक बार फिर राज्य की ओर से पुरजोर तरीके से इसे उठाया गया। उम्मीद की जानी चाहिए कि नीति आयोग और केंद्र सरकार इस मामले में उत्तराखंड की आवाज को सुनेंगे। वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकीय संतुलन को किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रखा जा सकता। प्रत्येक राज्य को इस दिशा में जागरूक और प्रतिस्पर्धी होने की जरूरत है। देखने में आ रहा है कि पर्यावरण संरक्षण को लेकर ज्यादा जिम्मेदारी हिमालयी राज्यों की झोली में डाल दी गई है। हिमालयी राज्यों में भी उत्तराखंड को कई मोर्चों पर पर्यावरणीय बंदिशों से जूझना पड़ रहा है। 71 फीसद वन भूभाग, बड़ी संख्या में वन्यजीव अभ्यारण्य, गंगा एवं यमुना जैसी राष्ट्रीय नदियों और उनकी सहायक नदियों की अविरलता की अहम जिम्मेदारी को उत्तराखंड बखूबी निभा रहा है। जाहिर है कि इसकी कीमत प्रदेश के बड़े भू-भाग को विकास से दूरी बनाए रखने के तौर पर अदा करनी पड़ रही है। खासतौर पर हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों से उक्त वजह से भी पलायन की समस्या गंभीर रूप धारण कर चुकी है। यही वजह है कि मुख्यमंत्री ने नीति आयोग में राज्य को ग्रीन बोनस देने की मांग पुरजोर तरीके से बुलंद की। आयोग में अब हिमालयी स्टेट रीजनल काउंसिल का गठन भी किया जा चुका है। ऐसे में हिमालयी राज्यों के लिए अलग से नीति नियोजन और विकास की उनकी जरूरतों को राज्यों के नजरिये से समझने में आयोग को मदद मिल सकेगी। राज्य ने आयोग से चार धाम ऑल वेदर रोड, ऋषिकेश-कर्णप्रयाग रेलवे परियोजना और केदारनाथ पुनर्निर्माण जैसी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के ड्रीम प्रोजेक्ट में शामिल योजनाओं को जारी रखने पर जोर दिया है। इन योजनाओं को राज्य की आर्थिकी में आमूलचूल बदलाव के लिए अहम माना जा रहा है। योजनाएं पूरी होने पर भविष्य में पर्वतीय क्षेत्रों में रिवर्स पलायन के हालात बनते दिख सकते हैं। मुख्यमंत्री ने कृषि में व्यापक बदलाव और ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत बनाने के लिए रूरल ग्रोथ सेंटर्स को विकसित करने की दिशा में किए जा रहे प्रयासों का जिक्र भी करते हुए महत्वपूर्ण सुझाव भी नीति आयोग को दिए हैं।

खुद को खत्म करते वामदल

ए. सूर्यप्रकाश

दुनिया भर में सियासी दल स्वयं को प्रासंगिक बनाए रखने के लिए नए तौर-तरीके अपना रहे वहीं भारत में वामदल पुरानी सोच और अतीत के नारों से चिपके हैं

फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा था कि राज्य नामक संस्था का पराभव सर्वहारा क्रांति का मुख्य परिणाम होगा। अगर 2019 के चुनाव बाद की तस्वीर देखें तो भारत में राज्य बहुत शक्तिशाली बनकर उभरा है। इतना ताकतवर जितना पहले कभी नहीं हुआ जबकि वामपंथी दल रसातल में चले गए। हालांकि लोकसभा चुनाव नतीजों के बाद अधिकांश विश्लेषण मुख्य रूप से कांग्रेस की करारी हार पर केंद्रित रहे हैं, मगर विलुप्त होते वामपंथी दलों की कहानी भी इसका उतना ही खास पहलू है। स्वतंत्रता के बाद शुरुआती तीन दशकों के दौरान देश के तमाम राज्यों में वाम दलों की ठीकठाक मौजूदगी रही। वर्ष 1951-52 के पहले आम चुनाव में अविभाजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी यानी भाकपा ने 16 सीटें जीती थीं। वर्ष 1962 के चुनाव में उसकी सीटों की संख्या बढ़कर 29 हो गई और उसे नौ प्रतिशत मत हासिल हुए। फिर पार्टी में विभाजन हुआ और भाकपा के अलावा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) यानी माकपा अस्तित्व में आई। दोनों ने 1967 में कुल 42 सीटें हासिल कीं, लेकिन उनका मत प्रतिशत नौ फीसद के स्तर पर रहा। तीन दशकों तय यही सिलसिला कायम रहा। उनका सबसे शानदार सम्मिलित प्रदर्शन 2004 में रहा जब दोनों ने मिलकर लोकसभा की 53 सीटें अपने नाम कीं। हालांकि उनका वोट प्रतिशत घटकर सात फीसद रह गया। उसके बाद उनके सितारे गर्दिश में जाते रहे। वर्ष 2014 में दोनों पार्टियों ने केवल दस सीटें हासिल कीं और उनका वोट प्रतिशत और छिटककर महज चार फीसद रह गया। इस बार वे खतरे के निशान पर पहुंच गए और केवल पांच सीटें जीत पाए। राष्ट्रीय स्तर पर उनका वोट प्रतिशत भी दो फीसद रह गया।

इन दोनों वामपंथी दलों और वाम मोर्चे के उनके अन्य साथियों की जमीन उनके मजबूत माने जाने वाले किलों में ही दरकती जा रही है। पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा से उनका तंबू उखड़ चुका है। केरल में भी उनकी नैया हिचकोले खा रही है। उनका सबसे बड़ा नुकसान पश्चिम बंगाल में दिखता है जहां 2004 में वाम दलों को 57.70 प्रतिशत मतों के साथ 32 सीटें हासिल हुई थीं जो आंकड़ा 2019 में सिमटकर 6.28 प्रतिशत मतों का रह गया और राज्य में वाम मोर्चे का खाता तक नहीं खुल पाया। जहां दुनिया भर के राजनीतिक दल स्वयं को प्रासंगिक बनाए रखने के लिए नए तौर-तरीके अपना रहे हैं वहीं भाकपा और माकपा पुरानी सोच-सिद्धांतों और अतीत के नारों से चिपकी हुई हैं। कामकाजी वर्ग, संगठित श्रम और पूंजीवाद को लेकर उनकी सोच में कोई बदलाव नहीं हुआ जबकि दुनिया बदल रही है। खुद मैंने पश्चिम बंगाल में चुनाव प्रचार के दौरान देखा कि माकपा कार्यकर्ता इंकलाब जिंदाबाद का पुराना नारा लगा रहे थे। बाजार अर्थव्यवस्था के चरम वाले दौर में आखिर वे किस तरह की क्रांति का राग अलापते रहते हैं। ये दोनों दल मौजूदा वास्तविकता से किस कदर कटे हुए हैं इसका सबसे बढ़िया उदाहरण उन सरकारी योजनाओं के गरीबों को पहुंचे लाभ को स्वीकार करने से

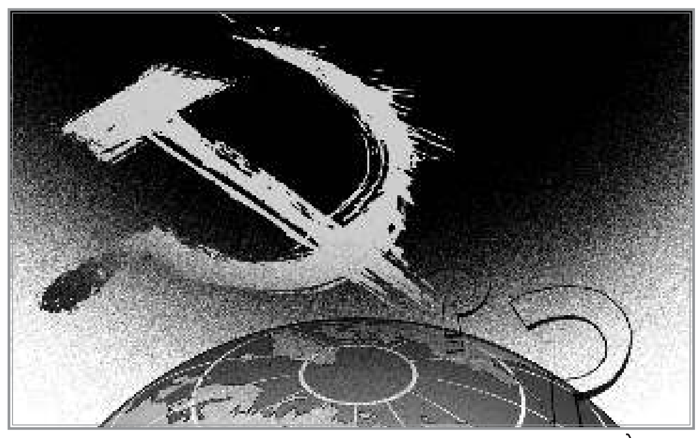

अवधेश राजपूत

इन्कार में दिखता है। वे यह महसूस नहीं करते कि प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, उज्ज्वला योजना, जन धन और डीबीटी जैसी योजनाएं जरूरतमंदों के जीवन में कितने सार्थक बदलाव ला रही हैं। मुद्रा पीएम मोदी की ऐसी अनूठी योजना है जिसका मकसद समाज के गरीब तबके में उद्यमिता को बढ़ावा देना है जिससे उनके सामाजिक एवं आर्थिक हालात में सुधार हो सके।

इस योजना के तहत सरकार गरीबों को उद्यम स्थापित करने के लिए कर्ज मुहैया कराती है। इसके पीछे विचार वित्त की पहुंच से दूर संभावित उद्यमियों को वित्त की धारा से जोड़ना है। इसके अंतर्गत 50,000 से दस लाख रुपये तक की राशि का ऋण मिलता है। इससे स्थापित उद्यम भले ही कितना छोटा हो, लेकिन उससे कम से कम पांच-दस लोगों को रोजगार अवश्य मिलता है। देश भर में मुद्रा योजना के लाभार्थी हैं। इस योजना में वंचित वर्ग के लोगों का जीवन सुधारने की भरपूर संभावनाएं हैं। कई राज्यों की यात्राओं के दौरान मैं ऐसे तमाम लाभार्थियों से मिला हूं। मुद्रा योजना के आंकड़े बहुत सुकून पहुंचाने वाले हैं। महिला उद्यमियों को मुद्रा योजना का सबसे अधिक लाभ पहुंचा है। कुल लाभार्थियों में उनकी तादाद 70 प्रतिशत है। साल की शुरुआत में सरकार ने बताया था कि मुद्रा योजना में उसने 7.23 लाख करोड़ रुपये के कर्ज बांटे हैं। उज्ज्वला योजना के तहत सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों को रसोई गैस कनेक्शन मुफ्त उपलब्ध कराया है। इसके तहत अभी तक सात करोड़ परिवारों को ये कनेक्शन दिए जा चुके हैं। इसी तरह गरीबों के लिए घर और शौचालय बनाने वाली योजनाएं भी दूरगामी प्रभाव वाली साबित हो रही हैं। हालांकि इनमें से कुछ योजनाओं का खाका पिछली सरकारों ने खींचा था, लेकिन प्रोत्साहन और प्रतिबद्धता के अभाव में उनका क्रियान्वयन बहुत सुस्त था। वर्ष 2014 में मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद इन योजनाओं के काम में तेजी आई और परिणाम सामने हैं। इन योजनाओं के लक्ष्य एकदम स्पष्ट हैं। नारी गरिमा और सम्मान सुनिश्चित करना हो या महिलाओं और बच्चों के जीवन स्तर और स्वास्थ्य में सुधार, ये इन योजनाओं के मूल में हैं।

ऐसे कार्यक्रमों को देखकर यही अपेक्षा की जाती है कि सभी वर्गों द्वारा उनकी सराहना की जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दोनों वाम दलों के प्रवक्ता मुद्रा और ऐसी अन्य योजनाओं को लगातार खारिज करते रहे जबकि ये योजनाएं गरीबों के जीवन का कायाकल्प करने वाली साबित हो रही हैं। उनके विरोध की इकलौती वजह यही है कि यह सब पीएम मोदी के दौर में हो रहा है जिन्होंने बेहद कम समय में इसे संभव कर दिखाया। चुनावी नतीजों ने दर्शाया कि इसे लेकर नकारात्मक प्रचार लोगों को रास नहीं आया।

इन दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों के अलोकप्रिय होने के और भी तमाम कारण हैं। इसमें सबसे पहले तो सेक्युलरिज्म को लेकर उनके नजरिये की बारी आती है। दोनों दल शाहबानो मामले के दौर से काफी आगे बढ़ चुके हैं जब सोमनाथ चटर्जी, सैफुद्दीन चौधरी और तमाम अन्य नेता मुस्लिम कट्टरपंथियों से भिड़ गए थे। उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार मुस्लिम महिला को तलाक के बाद मिलने वाले गुजारा भत्ते के निर्णय के खिलाफ राजीव गांधी सरकार के कानून का विरोध किया। वह 1986 की बात थी। बीते तीन दशकों में वामदल छद्म धर्मनिरपेक्षता के ध्वजवाहक बन गए हैं। हिंदू बहुसंख्यक उनकी आंखों में चुभते हैं और उन्हें इस्लामिक चरमपंथ कोई मुद्दा ही नहीं लगता। हिंदू भावनाओं को भड़काने की हालिया मिसाल सबरीमाला मामले में देखने को मिली जहां वाम दलों ने हिंदू मान्यताओं पर प्रहार के लिए लोगों को उकसाया। वाम दलों की आगे की राह क्या होगी? क्या वह ब्रिटिश लेबर पार्टी की तर्ज पर कुछ करेंगे जिसने कुछ दशक पहले अपनी सोच और कार्यशैली में बदलाव किया था। अगर वे और वामोन्मुखी होते हैं तो फिर उनका अंत निश्चित है। अगर वे कुछ दक्षिणोन्मुखी होते हैं तो अस्तित्व बचने की कुछ संभावना बची रह सकती हैं। वे आखिर किस राह जा रहे हैं? देश यह जानना चाहता है?

(लेखक प्रसार भारती के चेयरमैन एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

भारत के भविष्य का आधार बने नई शिक्षा नीति

सृजन पाल सिंह

स्कूलों को सिर्फ इंजीनियर और डॉक्टर ही नहीं, बल्कि देश और दुनिया के लिए सभ्य नागरिक भी तैयार करने हैं

वर्ष 2014 में केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने नई शिक्षा नीति लाने का वादा किया था। चूंकि पिछली शिक्षा नीति तीन दशक पहले आई थी इसलिए इस घोषणा से पूरे देश को काफी उम्मीदें थीं। इन उम्मीदों के बीच 2015 में टीएस सुब्रमण्यम के नेतृत्व में एक पांच सदस्यीय समिति का गठन किया गया। उसने नई शिक्षा नीति का एक मसौदा पेश किया, लेकिन किसी कारण उसे अनुकूल नहीं पाया और 2016 में एक नई समिति गठित कर उसकी बागडोर अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन को दी गई। नई सरकार बनते ही समिति की ओर से तैयार नई शिक्षा नीति का मसौदा मंत्रालय पहुंच गया। नई शिक्षा नीति का मसौदा सार्वजनिक होते ही सारा विवाद भाषा पर केंद्रित हो गया। इसके चलते प्रस्तावित नीति में अन्य महत्वपूर्ण तथ्य गौण हो गए, जबकि देश के करीब 30 करोड़ छात्र और लगभग एक करोड़ शिक्षकों के भविष्य का निर्धारण इस नीति के तहत ही होना है। भारत में सरकारी स्कूल, जो कि संख्या में तीन-चौथाई हैं, में शिक्षकों की नियुक्ति स्थाई रूप से होती है। इन शिक्षकों पर भविष्य के नागरिकों को बनाने की जिम्मेदारी तो डाल दी गई है, मगर उनकी उपयुक्त ट्रेनिंग पर ध्यान नहीं दिया जाता। आज सबसे ज्यादा जरूरी शिक्षकों को भविष्य की तकनीक की जानकारी देना और उसमें उन्हें माहिर बनाना है।

नई शिक्षा नीति में पहली बार हर वर्ष 50 घंटे की ट्रेनिंग की बात पर जोर दिया गया है। ऐसी ट्रेनिंग को शिक्षकों तक ले जाने के लिए तकनीक का प्रयोग किया जा सकता है। इस ट्रेनिंग व्यवस्था को सुचारू और सुदृढ़ बनाने के लिए जिला स्तर पर शिक्षकों के प्रोत्साहन और सम्मान की व्यवस्था की जा सकती है। शिक्षकों की ट्रेनिंग आधुनिक विषय जैसे नैनो टेक्नोलॉजी, ऑटोमेशन, मशीन लर्निंग और अंतरिक्ष विज्ञान जैसे विषयों में भी किए जाने की आवश्यकता है। हालांकि इन नए आयामों को हम बीएड से लेकर मध्य-करियर ट्रेनिंग तक कैसे लेकर जाएंगे, इस संदर्भ में नई नीति का मसौदा ज्यादा कुछ नहीं कहता। कई अन्य देश इस संदर्भ में आगे बढ़ चुके हैं। उदाहरण के लिए स्कॉटलैंड में 'दूसरे ग्रहों में जीवन' के बारे में शिक्षकों और छात्रों दोनों को पाठ्यक्रम के तहत बताया जा रहा है। इसके पीछे तर्क यह है कि अगले दो दशकों में हम मंगल और अन्य ग्रहों पर मानव सभ्यता को ले जाएंगे और जो बच्चे आज स्कूलों में हैं वही भविष्य के 'मंगल यात्री' बनेंगे। ऐसी आशावादी और भविष्य की ओर अग्रसर शैक्षिक सोच यदि 50 लाख की आबादी वाला स्कॉटलैंड रख सकता है तो फिर भारत को पीछे नहीं रहना चाहिए। हमें शिक्षा के क्षेत्र में अल्पावधि सेवा के तहत भी शिक्षकों को लाना होगा। भारत में हर वर्ष 15 लाख नए इंजीनियर बनते हैं, जो नौकरी की तलाश में रहते हैं। इसके साथ ऐसे हजारों विशेषज्ञ हैं जो सीमित समय के लिए शिक्षा के क्षेत्र में अपनी सेवाएं देने के लिए तत्पर हैं। क्या इस विशाल अप्रयुक्त प्रतिभा का प्रयोग हम शैक्षिक बदलाव के लिए कर सकते हैं? इसके लिए आवश्यक है कि हम नई शिक्षा नीति में चार साल तक की अल्पावधि के लिए शिक्षक बनने के अवसर खोलें जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ और तकनीकी शिक्षा प्राप्त ग्रेजुएट योगदान दे सकें। ऐसी व्यवस्था को सफल बनाने के लिए हर स्कूल में लगभग एक तिहाई शिक्षक अल्पावधि व्यवस्था से आने चाहिए, जिससे आधुनिक ज्ञान और उद्योग स्तर की टेक्नोलॉजी क्लासरूम तक पहुंचे सके।

यह भी समय की मांग है कि शिक्षा व्यवस्था की संपूर्ण बागडोर शिक्षकों के हाथों में दी जाए। वर्तमान में एक शिक्षक दो-तीन दशक की सेवाओं के बाद भी अधिकतम हेड मास्टर या प्रिंसिपल बनने का ही लक्ष्य रख सकता है। नई नीति में भी वरिष्ठ शिक्षकों को जिला स्तर तक कुछ पद देने की बात कही गई है, परंतु हमें इससे कहीं आगे जाने की आवश्यकता है। इस पद पर भी वह अपने से बीस साल कम अनुभवी व्यक्ति द्वारा चलाए जा रहे शासन और नौकरशाही व्यवस्था के अधीन रहेगा। उसे ऐसे लोगों को अपने कार्य का विवरण देना होगा, जिनका स्कूल और क्लासरूम चलाने का अनुभव लगभग नगण्य होता है। शिक्षकों का पाठ्यक्रम निर्धारित करने में भी योगदान सीमित होता है। कोई भी संस्था प्रगति तब करती है जब उसका नेतृत्व उस क्षेत्र के विशेषज्ञ करते हैं। इसका उदाहरण हम इसरो, डीआरडीओ, दिल्ली मेट्रो और अन्य अनेक सफल संस्थाओं में देख सकते हैं। डॉ. कलाम ने अपनी पुस्तक एडवांटेज इंडिया में इस पहलू पर एक विचार रखा था। हमने भारतीय शैक्षिक सेवा (आइटीएस) का सुझाव रखा था। इस सेवा के तहत शिक्षा के क्षेत्र में करियर बनाने वाले प्रतिभाशाली युवाओं तथा शिक्षकों को संपूर्ण शिक्षा प्रणाली की रचना, नियंत्रण और प्रशासन का उत्तरदायित्व दिया जा सकता है। शिक्षा क्षेत्र के बजट, पाठ्यक्रम, स्कूल निर्माण तथा सभी उपकरणों की व्यवस्था इन्हीं प्रतिभाशाली शिक्षकों के हाथ में होनी चाहिए।

आज के समय में हमें पाठ्यक्रम को हर दो वर्ष में संशोधित करने की नीति बनानी होगी। हर महीने मैं भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आए हजारों छात्रों से मिलता हूं और वे अक्सर कहते हैं कि विशेषकर गणित और विज्ञान की पढ़ाई 'उबाऊ' है। उन्हें यह समझ में नहीं आता कि कठिन फॉर्मूले याद रखने की क्या जरूरत है? क्या शिक्षा का पैमाना याद्दाश्त है या फिर जटिल समस्याओं का समाधान निकालना? नई शिक्षा नीति पर अमल करते समय इस सवाल पर विचार करना होगा। क्यों न हम खुली किताब परीक्षा के तहत छात्रों की परख उनकी समझदारी और अन्वेषण के आधार पर करें। शिक्षा में एक छात्र को आनंद का अनुभव होना चाहिए, भय का नहीं।

यूरोप के कई देशों विशेषकर जर्मनी से हम व्यावसायिक शिक्षा को स्कूलों में लागू करने के बारे में सीख सकते हैं। हमें याद रखना है कि स्कूलों को सिर्फ इंजीनियर और डॉक्टर ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर के कारपेंटर, प्लंबर, इलेक्ट्रिशियन और अन्य प्रकार के नागरिक देश और दुनिया के लिए बनाने हैं। इसके अलावा हर एक स्कूल के पास छात्रों के करियर प्लानिंग की सुविधा देने वाले केंद्र होने भी आवश्यक हैं, जिससे प्रतिभा, अवसर और रुचि के हिसाब से छोटी उम्र से ही छात्र और उनके अभिभावक भविष्य के लक्ष्य निर्धारित कर सकें। चूंकि शिक्षा और स्कूल एक समृद्ध भारत का प्रवेश द्वार हैं इसीलिए इस क्षेत्र पर हमारा अधिकतम ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार से नई शिक्षा नीति भारत के भविष्य का कर्णधार बन सकती है।

(पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के सहयोगी रहे लेखक कलाम सेंटर के सीईओ हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

पवित्रता

मनुष्यता के मूल गुण सदाचार, संयम, संतोष, दया, उपकार आदि हैं। इन गुणों को अपने जीवन में आत्मसात करना पवित्रता है और इन्हें त्यागना अपवित्रता है। ज्यादातर लोग अपने शरीर को शुद्ध करने में लगे रहते हैं, लेकिन वे मन की पवित्रता के बारे में नहीं सोचते हैं, जबकि मन की पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ है। लोग अक्सर किसी भी व्यक्ति की बाहरी सुंदरता या पहनावे को ज्यादा महत्व देते हैं और भीतरी गुणों को नजरअंदाज कर देते हैं। किसी को आंकने का यह नजरिया बिल्कुल गलत है, क्योंकि बाहरी सुंदरता समय के साथ मिटती जाती है, लेकिन हम अपने मन की सुंदरता को हमेशा बढ़ा सकते हैं।

मन की पवित्रता से शरीर की पवित्रता संभव है। शरीर की सुंदरता तात्कालिक, लेकिन मन की पवित्रता पूर्णकालिक होती है। हमारा शरीर अपवित्र भी हो तो धर्म हो सकता है, लेकिन अपवित्र मन से किए गए धर्म का कोई औचित्य नहीं होता है। इसलिए हमें अपने जीवन में प्रेम, दया, कृपा, विश्वास, नम्रता, संयम जैसे ईश्वरीय गुणों पर अमल करना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि यदि अपने जीवन में वास्तविक उन्नति चाहते हो तो अपने भीतर के सभी बुरे विचारों और दुर्गुणों का त्याग करो, जिससे हमारा मन पवित्र हो जाए। मनुष्य की सोच अच्छी एवं बुरी दोनों हो सकती हैं, लेकिन अच्छे-खराब का निर्णय हमारा मन-मस्तिष्क करता है। हम फिर उसी के अनुरूप कर्म करते हैं और उसी से हमें फल प्राप्त होता है। यदि हम पवित्र विचारों से प्रेरित होकर और किसी के प्रति दुर्भावना न रखते हुए कर्म करेंगे तो हमें यश एवं सम्मान प्राप्त होगा। मन और विचारों की पवित्रता से ही मनुष्य सदकर्म करता है और उसी से जीवन का कल्याण होता है। संत रविदास जी कहते हैं कि निर्मल मन में ही भगवान वास करते हैं। यदि मन में किसी के प्रति बैर भाव नहीं है, कोई लालच या द्वेष नहीं है तो आपका मन ही भगवान का मंदिर, दीपक और धूप है। ऐसे पवित्र विचारों वाले मन में प्रभु सदैव निवास करते हैं। हर मनुष्य के जीवन में समस्याएं और परेशानियां आती हैं। यदि मनुष्य साहस, धैर्य और ईमानदारी से इनका मुकाबला करे तो वह न सिर्फ अपनी परेशानियों से मुक्ति पाता है, बल्कि सफलता भी अर्जित करता है। ऐसे में उसका चरित्र और अधिक निखर जाता है।

शंभूनाथ पांडेय (पूर्व नौसैनिक)

बाल विवाह का दुष्परिणाम

देवेंद्रराज सुथार

बाल विवाह न केवल बालिकाओं की सेहत के लिहाज से, बल्कि उनके व्यक्तिगत विकास के लिहाज से भी खतरनाक है

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र बाल निधि (यूनिसेफ) ने फैक्टशीट चाइल्ड मैरिजेज-2019 नामक एक रिपोर्ट में कहा है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान भारत में बाल विवाह की दर में कमी आई है, लेकिन बिहार, बंगाल और राजस्थान में यह प्रथा अब भी जारी है। इस रिपोर्ट के अनुसार बिहार, बंगाल और राजस्थान में बाल विवाह की यह कुप्रथा आदिवासी समुदायों और अनुसूचित जातियों सहित कुछ विशेष जातियों के बीच प्रचलित है। रिपोर्ट में कहा गया है कि बालिका शिक्षा की दर में सुधार, किशोरियों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा किए गए निवेश एवं कल्याणकारी कार्यक्रम और इस कुप्रथा के खिलाफ सार्वजनिक रूप से प्रभावी संदेश देने जैसे कदमों के चलते बाल विवाह की दर में कमी देखने को मिली है, लेकिन अब भी पूर्णरूप से कामयाबी नहीं मिली है। रिपोर्ट के अनुसार 2005-2006 में जहां 47 फीसद लड़कियों की शादी 18 साल की उम्र से पहले हो गई थी, वहीं 2015-2016 में यह आंकड़ा 27 फीसद था। यूनिसेफ के अनुसार अन्य राज्यों में बाल विवाह की दर में गिरावट की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है, किंतु कुछ जिलों में बाल विवाह का प्रचलन अब भी उच्च स्तर पर बना हुआ है।

यह रिपोर्ट हमारे सामाजिक जीवन के उस स्याह पहलू की ओर इशारा करती है, जिसे अक्सर हम रीति-रिवाज एवं परंपरा के नाम पर अनदेखा करते हैं। तीव्र आर्थिक विकास, बढ़ती जागरूकता और शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद भी अगर यह हाल है तो जाहिर है कि बालिकाओं के अधिकारों और कल्याण की दिशा में अभी काफी कुछ किया जाना शेष है। बाल विवाह न केवल बालिकाओं की सेहत के लिहाज से, बल्कि उनके व्यक्तिगत विकास के लिहाज से भी खतरनाक है। शिक्षा, जो कि उनके भविष्य का उज्ज्वल द्वार है, वह हमेशा के लिए बंद भी हो जाता है। शिक्षा से वंचित रहने के कारण वे अपने बच्चों को शिक्षित नहीं कर पातीं और फिर कच्ची उम्र में गर्भधारण के चलते उनकी जान को भी खतरा बना रहता है। कच्ची उम्र में मां बनने वाली ये बालिकाएं न तो परिवार नियोजन के प्रति सजग होती हैं और न ही नवजात शिशुओं के उचित पालन पोषण में दक्ष। कुल मिलाकर बाल विवाह का दुष्परिणाम व्यक्ति, परिवार को ही नहीं, बल्कि समाज और देश भी भोगना पड़ता है। जनसंख्या में वृद्धि होती है जिससे विकास कार्यों में बाधा पड़ती है।

बाल विवाह एक ऐसी कुरीति जिसमें दो अपरिपक्व लोगों को जबरन जिंदगी भर साथ रहने के लिए एक बंधन में बांध दिया जाता है। दरअसल कुछ लोग अपनी लड़कियों की शादी कम उम्र में सिर्फ इसलिए कर देते हैं कि उनके ससुराल चले जाने से दो जून की रोटी बचेगी। यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार गरीबी, लड़कियों की शिक्षा का निम्न स्तर, लड़कियों को आर्थिक बोझ समझना, सामाजिक प्रथाएं एवं परंपराएं बाल विवाह के प्रमुख कारण हैं। वहीं कुछ लोग अंधविश्वास के चलते भी अपनी लड़कियों की शादी कम उम्र में कर रहे हैं। हमें समझना होगा कि बाल विवाह एक सामाजिक समस्या है। अतः इसका निदान सामाजिक जागरूकता से ही संभव है। लिहाजा समाज को आगे आना होगा।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

जल की बूंदों को संभालना जरूरी

कठिन लक्ष्य है हर घर को नल से जल शीर्षक से लिखे अपने लेख में संजय गुप्त ने मोदी सरकार की घर-घर नल द्वारा जल पहुंचाने के लक्ष्य में देश की नदियों के दिन-प्रतिदिन सिकुड़ने को बाधा माना है। देश की प्यास बुझाने और सिंचाई के लिए मोदी सरकार की नई नीति और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा देश के पंचायत प्रधानों को खत लिखकर अनुरोध करना कि वे बरसात के मौसम में जल संग्रहण करें बहुत प्रशंसनीय है। प्राकृतिक संसाधनों के सरताज देश भारत में आज बहुत से क्षेत्र पीने और सिंचाई के पानी के लिए तरस रहे हैं। जरूरी नहीं कि हर घर को नल से जल पहुंचाने के लिए नदियों का ही सहारा लिया जाए। हमारे देश में जल के प्राकृतिक स्रोत भी बहुत हैं और बरसात में बारिश भी खूब होती है। वर्षा के जल को संभाल कर देश की प्यास बुझाई और सिंचाई की जा सकती है। गिरते भूजल स्तर को सुधारने के लिए भी बारिश के पानी को संभालना बहुत जरूरी है। हमारे देश में जल संरक्षण के लिए सरकारें बातें तो बहुत करती हैं, लेकिन ये हकीकत की दुनिया से बहुत दूर होती हैं। जल संरक्षण के लिए वर्षा जल को संभालने के लिए भी सरकारें ढुलमुल रवैया अपनाती हैं। अगर वर्षा जल संरक्षण के लिए बने नियमों का वाकई पालन हो रहा होता तो आज आसमान से बरसने वाली अमृत की बूंदें सीवरेज या नालों-नालियों में बेकार न बहतीं, बल्कि लगभग हर घर, ऑफिस और फैक्ट्रियों मे रेनवाटर हारवेस्टिंग सिस्टम लगाकर लोग इन बूंदों को संभाल कर रखते।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

डॉक्टरों की हड़ताल

पहले मौत के मुंह में जाते मरीजों को नवजीवन देकर बचा लेने वाले डॉक्टरों को मरीजों के परिजन व जनसामान्य में भी उनकी तुलना धरती के भगवान के रूप में की जाती थी। अब वर्तमान में स्वार्थ व पैसा दोनों डॉक्टरी पेशे में भी करुणा, दया, सेवाभाव आदि मानवीय गुणों पर भारी पड़ रहा है और ये दुर्गुण डॉक्टरी पेशे से जुड़े पंचतारा होटल संस्कृति के अस्पतालों में भी बहुत ही घिनौने रूप में दिखाई देने लगे हैं। यह कटु सत्य है कि अधिकतर डॉक्टरों और नर्सिंग होमों के लिए उनका प्रथम उद्देश्य मरीज की जान बचाने से ज्यादा महत्वपूर्ण उनके परिजनों से किसी भी तरह ज्यादा से ज्यादा आर्थिक लाभ कमाना रह गया है। जरूरत से ज्यादा अनावश्यक टेस्ट कराना, महंगी और ज्यादा दवाओं को लिखना आज के कथित आधुनिक अस्पतालों के लिए आम हो चले हैं। अस्पतालों में दवा माफिया, डॉक्टरों और उसके संचालकों के बीच मरीजों को अधिक से अधिक लूटने के लिए बहुत जबर्दस्त गठबंधन है, जो गरीब मरीजों के परिजनों से भी अधिक मूल्य पर दवा खरीदने को बाध्य करते रहते हैं। डॉक्टरों के साथ दुर्व्यवहार निंदनीय है, लेकिन डॉक्टरों और अस्पतालों को भी मरीजों के प्रति असंवेदनशीलता और क्रूरता भरे व्यवहार पर पुनर्विचार करना चाहिए। मरीजों की मौत की कीमत पर डॉक्टरों की हड़ताल किसी भी दृष्टिकोण से गरिमापूर्ण और मानवीय नहीं कही जा सकती है।

निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद

नीति-अनीति का पाठ

कठुआ और अलीगढ़ की घटनाएं सभ्य कहे जाने वाले समाज के माथे पर कलंक हैं। इन घटनाओं से इंसानियत भी शर्मसार हुई है। इससे भी दुखद है कि कुछ लोग इसे धर्म के चश्मे से देखने में व्यस्त हैं। वैसे यह धर्म की नहीं, अपितु सामाजिक मूल्यों के निरंतर गिरते स्तर की समस्या है। संयुक्त परिवार प्रणाली टूट रही है जिसके कारण युवा पीढ़ी पारिवारिक मार्गदर्शन से वंचित हो भटकाव की ओर जा रही है। आखिर कब हम अपनी खुद की संतानों को नीति अनीति का पाठ पढ़ाएंगे? अब समय आ गया है कि समाज पल्ला झाड़ने के बजाय अपनी जिम्मेदारी को समझे।

सतीश त्यागी काकड़ा, इंदिरापुरम, गाजियाबाद

समाज की भी जिम्मेदारी

भारत में तमाम ऐसी समस्याएं भी हैं जिनका कोई समाधान नहीं निकल पा रहा है। अशिक्षा, बेरोजगारी, महिला अपराध व भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं ने जड़ें जमा ली हैं। इनमें ज्यादातर समस्याएं अपने ही लोगों द्वारा उत्पन्न हैं। लोगों से ही देश और समाज बनता है, लेकिन जब हम खुद नागरिक कर्तव्य को भूल कर अपने स्वार्थ में लगे हैं तो समाज की चिंता कौन करेगा? हर समस्या का समाधान सरकार नहीं कर सकती है। समाज के लोगों को भी इसके समाधान के लिए आगे आना होगा।

nikitabedi1994@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं न हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।